# भगवत् कृपा

# THE DIVINE GRACE

महाप्रभु स्वामिनारायण प्रणीत सनातन, सचेतन और सक्रिय गुणातीतज्ञान का अनुशीलन करने वाली मासिक सत्संगपत्रिका

| | | |
|---|---|---|
| वर्ष-3, अंक-11 | सम्पादक : साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदासजी | वार्षिक चन्दा-20.00 |
| सोमवार, 12 नवं.' 79 | मानद सहसम्पादक: डॉ. महेन्द्र दवे-श्री विमल दवे | प्रति अंक : 2.00 |


## कृपावतार स्वामिश्री सहजानंदजी

### 'गढडा'—महाराज का हृदय !

महाराज के द्वारा की गई मन्दिर निर्माण की प्रवृत्ति की जब बात चल रही है और साथ-साथ मनुष्य हृदय निर्माण की प्रवृत्ति की बात चल रही है तब दादाखाचर और जीवुबा और लाडुबा के नाम का स्मरण होना स्वाभाविक है।

आश्चर्य की बात यह है कि सारे संसार में गढडा (गढपुर) महाराज का हृदय है तब भी पहले मंदिर अहमदाबाद में निर्माण हुआ। बड़ताल अहमदाबाद और कच्छ में मंदिर खड़े हो गये, किन्तु गढडा तो क्या सारे सौराष्ट्र में स्वामिनारायण का एक भी मन्दिर नहीं था। यह स्थिति थी। परिणाम रूप एक दिन सौराष्ट्र के पचाला में महाराज के सब काठीभक्त इकट्ठे हुए और चर्चा करने लगे कि गुजरात और कच्छ के हरिभक्त हमसे अत्यधिक भाग्यशाली है; महाराज ने उस धरती पर मन्दिरों के निर्माण किये किन्तु हमारी सौराष्ट्र की धरती पर एक भी मन्दिर का निर्माण नहीं किया। चलो, हम सब महाराज के पास चले और इसका कारण पूछ ही ले। ऐसा सोच कर सब काठी हरिभक्त चले और महाराज के पास जाकर अपने मन की बात कह डाली—

''महाराज ! आपने गुजरात और कच्छ में मन्दिर-निर्माण किये और सौराष्ट्र को तो आप भूल ही गये। क्या कारण? आप हमारे प्रदेश में एक सुन्दर मन्दिर का निर्माण करवाईए।''

महाराज ने मंद मंद स्मित करते हुए कहाः

''देखो, बात ऐसी है कि मैं अधिकतर यहां सौराष्ट्र में ही रहता हूँ। आप लोगों से अधिक दूरी पर जाता भी नहीं हूँ। गढडा, लोया, पंचाला अर्थात् सौराष्ट्र में ही रहता हूँ। आप सबको मेरा दर्शन प्रायः नित्य होता है, जबकि गुजरात और कच्छ में कभी कभी जब उत्सवों में जाता हूँ तब ही वहां के हरिभक्तों को मेरा दर्शन होता है। अतः वे लोग मेरा नहीं तो मेरी प्रतिमा का दर्शन नित्य कर सकें इसके लिये वहां मन्दिर-निर्माण किया गया है, किन्तु आपका इतना अतिशय प्रेम और सद्भाव है अतः यहां भी—सौराष्ट्र में भी मन्दिर होगा।''

महाराज के यह प्रेमपूर्ण वचन सुनकर सब अत्यंत प्रसन्न हो गये।

## उन्मत्त गंगा की पहाड़ी

अब बात आई कि मन्दिर बनाएं तो कहां बनाएं? सर्व प्रथम महाराज ने गढडा में ही घेला (उन्मत्त गंगा नदी) के किनारे पर जो पहाड़ी है वहां सुन्दर स्थान है उसको चुना और वहां ही मन्दिर निर्माण करने का संकल्प किया। हरजी ठक्कर को बुला कर जांच की कि इस स्थान के मालिक कौन है; तो कहा गया कि यह भूमि है दादाखाचर और जीवाखाचर की मालिकी की। दादाखाचर ने तो 'हां' कह दी। किन्तु जीवाखाचर ने स्पष्ट मना कर दिया। महाराज किसी भी बात में आग्रही थे ही नहीं, अतः वह विचार छोड़ दिया और सारंगपुर में मन्दिर निर्माण की व्यवस्था करने के लिये चले गये। किन्तु यह सुन कर जीवुबा-लाडुबा को इतना गहरा सदमा पहुँचा कि दोनों ने अन्नजल का त्याग कर दिया और दोनों अपने भाई दादाखाचर के साथ सारंगपुर गई और गढडा में ही मन्दिर होना चाहिए ऐसा सत्याग्रह किया।

## दादाखाचर और जीवुबा लाडुबा की भक्ति

यहां दादाखाचर और इन दोनों बहनों के बारे में कुछ कहना उचित होगा।

कारियाणी गांव के काठी ठाकुर मांचाखाचर और गढडा के ठाकुर एभलखाचर दोनों पक्के मित्र थे। महाराज के समागम के आने के पूर्व भी मांचाखाचर नीतिनियम में दृढ़, बालब्रह्मचारी प्रभुभक्त थे और सदाव्रत चलाते थे और भूखे को नित्य अन्नदान करते थे। भक्ति में ही उनको तृप्ति थी। सांसारिक चीजों की तृष्णा इनमें नहीं थी। अर्थात् मन पक्का था। ऐसे मांचाखाचर को एक बार भगवान स्वामिनारायण का दर्शन हुआ और दर्शन पाते ही इनको स्पष्ट हो गया कि यह ही स्वयं भगवान है जिनकी मैं तलाश में था। शीघ्र ही वे महाराज के एकांतिक भक्त हो गये और महाराज को अपने गांव 'कारियाणी' में पदार्पण करने की प्रार्थना की। महाराज ने भी उस प्रार्थना को स्वीकार किया। मांचाखाचर को इससे इतना आनन्द हुआ कि इन्होंने यह बात अपने परम मित्र और गढडा के ठाकुर एभलखाचर को की 'आप जिसकी पूजा करते हो वह भगवान स्वयं कारियाणी आ रहे है। आप सपरिवार निश्चित उस समय आईए और दर्शन करके कृतार्थ होईए।'

एभलखाचर नीति नियम पालन करने वाले और पवित्र जीवन गुजारने वाले भक्त थे। वे प्रतिदिन श्रीमद्भागवत और श्रीमद् भगवतगीता का श्रवण करते थे और स्वयं वाचन करते थे। अतः जब मांचाखाचर ने उनको महाराज के दर्शन के लिये कारियाणी आने का निमंत्रण दिया तब वे बहुत प्रसन्न हो गये और यथा समय अपने पुत्र उत्तम कुमार (वह ही आगे जाकर दादाखाचर के नाम से स्वामिनारायण सम्प्रदाय में सुप्रसिद्ध हो गये) और दोनों लड़कियां जीवुबा और लाडुबा को लेकर कारियाणी पहुंच गये। कारियाणी में महाराज के दर्शन हुए इससे वे अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनको भी अनुभूति हुई कि महाराज स्वयं श्रीकृष्ण परमात्मा है। दादाखाचर, जीवुबा और लाडुबा को भी ऐसी ही दृढ़ प्रतीति हुई। सब उसी समय महाराज के भक्त हो गये। जब मांचाखाचर ने अपने मित्र एभलखाचर का परिचय करवाया तब महाराज ने कहा-

''इनके जन्म के पूर्व से ही मैं तो इनको पहचानता हूँ।''

यह सुनकर एभलखाचर ने कहाः

''महाराज ! एक बार आप मेरे गांव गढडा को पावन कीजिए।''

यह सुनकर महाराज ने प्रेमपूर्वक अट्टहास्य कर के कहाः

''गढडा तो हमारा ही गाँव है और हम वहाँ ही रहने वाले हैं।''

एभलखाचर अत्यन्त प्रसन्न हो गये। एभलखाचर का पूर्व निर्धारित कार्यक्रम तो यह था कि कारियाणी में भगवान का दर्शन करके शीघ्र वापस गढडा आ जायेंगे। किन्तु महाराज के दर्शन करने के बाद ऐसी प्रेममयी आत्मीयता हो गई कि महाराज से एक क्षण भी दूर रहने का जी नहीं करता था। अतः वे कारियाणी में ही रह गये और नित्य महाराज की सेवा करने लगे। यह है भगवान या भगवत्स्वरूप संत की आकर्षण शक्ति-एक अद्‌भुत और अनोखा ऐश्वर्य जिससे कि अपने प्रथम संपर्क में ही भक्त को आत्मीय बना कर उसे महसूस करवा देते हैं कि 'यह स्वामी मेरे है'। इतना ही नहीं, भक्त को तसल्ली ही हो जाती है कि मैं इनका हूं....मुझे मेरा सारथी मिल गया....'। दर्शनमात्र से यह प्रतीति जहां भी होवे, हमें निश्चित समझना चाहिए की यहां भगवान की शक्ति सांगोपांग काम कर रही है !

बाद में महाराज ने गढडा में पदार्पण किया और अपने पूर्वोच्चारित शब्द के अनुसार 'गढडा' महाराज का प्रमुख स्थान हो गया। महाराज प्रायः गढडा में ही रहने लगे....। जहां महाराज हो वहां लोगों का तांता बन रहे यह स्वाभाविक था। प्रतिदिन भक्तगण आते रहते थे। साधु सन्त भी आते रहते थे। इन सबका संभाल लेना, इनको सब प्रकार की सुविधा देना अब जीवुबा-लाडुबा के जिम्मे आ गया। दोनों बहनों के छोटे भाई दादाखाचर का भी इसमें योगदान था। बीस बीस साल तक अपनी यह जिम्मेदारी तीनों ने अत्यंत प्रेम और सेवा भावना से अदा की। जीवुबा लाडुबा स्त्रियों में सत्संग का भी प्रचार करती थीं। दोनों बहनों की शादी हो गई थी किन्तु दोनों संसार से अत्यंत विमुख थी। केवल महाराजमय थी। पिता के वहां रहती थी। पवित्र जीवन गुजारती थी। पुरुष की परछांइ से भी दूर रहती थी। राजकुमारियां थी किन्तु उनका खाना-पीना-पहनना सब में असाधारण सादगी थी। उनको गहने में सुख नहीं था। महाराज और साधु-सन्तों की सेवा ही उनके सुख का विषय था !

महाराज की सेवा में कौन आगे था यह कहना मुश्किल था। दो शरीर, किन्तु एक प्राण और उस प्राण को साध केवल महाराज ! दादा खाचर ने भी अपनी दोनों बहनों को भक्ति में आदर्श माना था। महाराज का शब्द और तीनों के लिये अटल आज्ञा !

## दादा तो दादा ही है—

इतनी इनको श्रद्धा थी कि महाराज हमें जो कुछ कहते है, हमें जो कुछ करने की आज्ञा देते हैं वह हमारे आध्यात्मिक विकास के लिये ही है। अनेक बार कसौटी भी हुई किन्तु वे शत प्रतिशत सुवर्ण शुद्ध खरे उतरे थे। वास्तव में यही है भगवत्ता। भगवान और भगवत्स्वरूप सन्त हमारे जीवन में-हमारे भीतर कार्य करने लगते हैं तब हमारी वृत्ति प्रवृत्तिओं में एक परिवर्तन आता है। हमारी इच्छा, हमारा अहंकार जो व्यक्ति विशिष्ट राग द्वेषों से भरपूर होता है वह नष्ट करने संत हमारे मन को नया मोड़ देते हैं....हमारी इच्छाएं नष्ट होती है, उनकी उपेक्षा होती है...। परन्तु सेवक का लक्षण यह है कि भगवान और सन्त हमें कुछ भी कहे करे, हमारी प्रीति में अंतर नहीं पड़ना चाहिए। उनकी महेच्छा और सदिच्छा में हमारी इच्छा को विलीन करनी चाहिए। यह है

संत के साथ सच्ची प्रीति का लक्षण ! वह ही किया दादाखाचर और जीवुबा-लाडुबा ने।

ऐसी बहनों अन्नजल छोड़कर सत्याग्रह करें और दादाखाचर श्रद्धापूर्ण शब्दों में प्रार्थना करें तब महाराज को इनका वचन मानना ही पड़ेगा यह स्वाभाविक था। स्वयं महाराज भी गढ्डा में मन्दिर हो ऐसा चाहते थे। अतः महाराज ने कहाः

''आपकी बात तो ठीक है किन्तु गठडा में मन्दिर के लिये स्थान तो चाहिए। वह पहाड़ी वाला इलाका तो गया।''

तब शरणागति के भाव से अत्यंत प्रेम से दादाखाचर ने कहाः ''गढडा में जो मेरा पूरा दरबार है वह आपको सोंप दिया महाराज ! महाराज के मुख से उस समय एक सार्थक उद्‌गार निकल गया-''दादा तो दादा ही है। इनकी जोड़ का कोई नहीं है।''

वास्तव में महाराज के सत्संगियों में दादाखाचर का नाम अमर है, अमर रहेगा। इनके त्याग के कारण आज वचनामृत के हर पन्ने पर दादाखाचर का नाम उल्लिखित है। आज गढडा में जो गीपानाथ का मंदिर है दादाखाचर और उनकी दो बहनों के भव्य त्याग का प्रतीक समान है। यह मन्दिर प्रत्येक हरिभक्त को प्रेरणा प्रदना करता है और इसके कारण ही आज गढडा स्वामिनारायण संप्रदाय का ही नहीं, सारे संसार का परम पवित्र तीर्थ है।

दादाखाचर ने अपना महल और आसपास का सारा स्थान ताम्रपत्र पर मंदिर के लिये भगवान स्वामिनारायण को समर्पित कर दिया। भूमिपूजन पर दो दिन का महोत्सव हुआ। प्रथम दिन 'नृसिंह जयन्ती' और दूसरे दिन 'कूर्म जयन्ति' मनाई गई। दक्षिण दिशा का कमरा जहां पांचुबा रहती थी वह तुडवा दिया। भूमि साफ सुथरी की गई। बाद में ज्योतिषी को बुलवाया और वि.सं. 1881 के ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी और शनिवार के दिन भूमिपूजन हुआ। सब से पूजा करवाई गई। जब दादाखाचर की बारी आई तब इनको समाधि लग गई और समाधि में इन्होंने तीन शिखरयुक्त सुवर्ण मंदिर भूमि में से ही प्रकट होता हुआ देखा। तब उन्होंने यह अद्वितीय मंदिर ऐसे ही वहां रखने का अनुग्रह महाराज से किया। किन्तु महाराज सबको सेवा का लाभ देना चाहते थे अतः वह 'लीला' अदृश्य हो गई और मंदिर निर्माण प्रारंभ हो गया।

**क्रमशः**

## Short cut to liberation

The Real Tantra is a short cut to liberation where instantaneous enlightenment happens by pragat yugal upasana or worship and sadhana under competent real master, just as it happened to Vivekanand through Ramkrishna Paramhansa. As such the greatest real tantrik of all ages is Lord Krishna with Radha and Gopijanas. In the same manner, the most outgoing exposition of the manifestation of Lord Swaminarayana with His eternal abode Akshara Brahman is also reflected as a noble epochmaking features in the sense that it could uplift the sinners, goondas, vagabonds into the new dynamic life of purity and refinement as it happened in the 19th century with Jobanpagi, Manbha and the prostitue of Jetalpur, Their, lives were completely changed into the Divine life. No competencey or specific morality was requird here, Just obeying the command of the Mster in one single incident purified their hearts and destroyed their egoistic tendencies, attitudes and aptitudes. It

was really the supramental working of the Master through Akshara Brahman. It is the supermacy and sovereignty of His ommipotent, omnicient and omnipesent power of living Divine Entitles. it has also worked miraculous changes in masses of kathis; kolis and down-trodden crimnial dacoits ; who have attained a new spiritual status ., it was a great dynamic revolution and has effected easy transcendence from lowest consciousness. To some, these statements may seem unbelieveable. However, they are the stark realities which have actually happened during His lifetime, which were recorded in Royal Asiatic Journals from 1880 to 1896 and Bishop willamson had also narrated many stories of this most wonderful and magnanimous social reforms carried out by Sahajanand Swami. It was a mass movement of total transformation without restricting or forcing them to fllow the complicated techniques, rituals, rigorous disciplines and peanaces for purification and perfection.

Another distinguishing feature was of miraculous trance-samadhi which was experienced by thousands of people in saurashtra and kutch of Gujrat State. The life, teachings and movements of Sahajanand swami with a band of 500 spiritual technicians revolutionised the whole of social structure of ignorant and sensuous people. It was liberation for all who could put faith in and surrender to the living Master. But the mental consciousness has always remained the troubling problem for self-realisation. The thinking process has to be completely changed for inbibing divine knowledge and the highest state of consciousness as pure contentless consciousness, (Nirvikalpa Samadhi).

This was made easy, swift and sure by the process of loving and respectful adoration towards Akshar Brahman or Brahmiinised Saint and by following their commands with constant and continuous respect and attitude of love-intimacy. It was unique relationship between Sadhakas and Master which paved the way for transcending the conflicting and confusing state of mind, instincts and ignorant consciousness. This was a short cut for enjoyment and liberation in this life.

The process of awakening the kundalini would naturally be extremely dificult for the common masses. This was made extremely simple and swift by be living spiritual master as supremely Divine so that their minds become Nirvasanic and go beyond cusal and mahakarna bodies and thereby merging into brahmic consciousness. Sahajanand Swami's most attractive image and dynamic life was the culmination of totality of escstasy of love, power, peace and bliss for all who came in His contact. Holy festivals and music were widely spread as a symbol of eradicating their inner passions and regulating their instincts with loving songs, ras, ritual and music. Poets like Muktanand and Nishkulanand have written more than 5000 kirtans pertaining to the divine master. Bhakti-Sangeet and other literature appealing to masses sprang up suddenly with overflowering and gracefulness. With the singing of a few songs and ras play in the presence of the master used to lead

Regd. No. D (D) 655

them into trance and their subconscious repressed complexes were eradicated, and their karmic debts were settled. It was really the spiritual development and self-realisation. There was no consideration of any dualities or distinctions which generally mark the state of ignorance and avidya.

This is the real kula doctrine or Gunatitabhav which was spread openly for the final liberation and emanicipation of all who were attached with their masters with 'Ananyabhav' or shuddhabhav. It was considered as holy family in this fellowship and in akshara purushottam philosophy it is and will be ever continued and counted in the same manner. One can come and remain in contact with the manifested Divine Sadguru for this attainment of kingly Royal path. The atom bombs can kill the masses but cannot eradicate their wickedness but Sahjanand Swami and His Jivanmukta's names which ended in Ananda, i.e. Bliss consciousness eradicated the wickedness inherent as 'Anand, i.e. Bliss consciousness cradicated the wickedness inherent as 'Avidya' in the heart of the masses. These people according to Gita willingly accepted Sahajanand's ations, movements and commands as supremely Divine and as such they become Divine through kula doctrine. The advanced Sadhakas could remain in sthita-prajna state of consciousness and could not be disturbed by external calamities, chaos, and conflicts and thus were always in Aksharadham here i.e. above time-space and causation limits. They enjoyed the real ecstasies of life with liberation and brahmisthiti.

Identification and equivalence of the self with supreme self-where knower, known and knowing, experience, experienced and experiencer get fully united as total vision and divine action by the divine master in final communion with parabrahman the ultimate whole experience, is the quintessence of real tantric system, most suites to this age.

Hope and promise has been authentically given by Lord Swaminarayan as bold statements in spiritual matters. One can verify and test them in this life and just as the fruit of a thing lies in eating or the medicine is one which cures, in the same manner if these techniques are not effective they may be totally rejected.

This Akshara Prurshottam Doctrine is open for all, for both the sexes, irrespective of caste, creed, colour or conviction. We invite you all, the true aspirants who have inner urge for realising the truth, with faith and reason. Here these in no domination no command, no force, no restrictions.

Let us, therefore celebrate this auspicious ennobling occasion and the happiest moment of our life in the Divine plan by Divine Master for Divine Action through Divine Actors or Sadhakas-the seekers of absolute truth. May god bless us an for this Divine Vision, in this life, universe and beyond.

From : The Real Essence of Tantra.

साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदास जी द्वारा योगी डिवाईन सोसाईटी,
ए-103, अशोक विहार-III, दिल्ली-110052 फोनः 711838
मुद्रण स्थानः ठक्कर प्रिंटिंग प्रेस, 2588, बस्ती पंजाबियान, सब्जी मण्डी, दिल्ली-110007